Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 02, Issue: 01, March, 2026
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

पूर्वमध्ययुगीन वस्त्र निर्माण प्रौद्योगिकी में रंगाई एवं छपाई

प्रो० (डा०) विजय बहादुर सिंह यादव
प्रोफेसर एवं डीन,
प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
म० ज्यो० फुले रोहिलखण्ड विश्वविद्यालय
परिसर, बरेली।

करिश्मा अग्रवाल
शोध छात्रा
प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग
म० ज्यो० फुले रोहिलखण्ड विश्वविद्यालय
परिसर, बरेली।
Email: manojgoel232@gmail.com

सारांश

संस्कृति की प्रगति के साथ ही वस्त्र विन्यास का महत्व शरीर को सजाने की दिशा में विशेष रूप से दिखाई देता है। इस दिशा में वस्त्रों का महत्व अलंकारों के समकक्ष है। वस्त्र मनुष्य के सांस्कृतिक विकास का प्रतीक है। भारत में वस्त्र प्रौद्योगिकी अत्यधिक विकसित थी और संभवतः भारत विश्व का पहला देश था जहाँ कपास के रेशे का उत्पादन और वस्त्रों का निर्माण प्रारम्भ हुआ।
वस्त्र निर्माण से सम्बंधित अपनी दीर्घकालिक विकास यात्रा में जहाँ वस्त्र, उनके प्रकारों एवं निर्माण में बदलाव देखने को मिला वहीं वस्त्रों के विविध प्रकार के रंगों और छापों में भी विविध परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। भारतीय प्रारम्भ से ही वस्त्रों की सुंदरता के प्रति सचेत रहे जिसका परिणाम उनके द्वारा विविध प्रकार के रंगाई के रंगों और छापे के निर्माण के रूप में सामने आया। भारत ही नहीं वरन् रोम आदि बाहरी देशों में भी भारतीय वस्त्र, रंग एवं छापे अत्यधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय थे।

प्रमुख शब्द– रंगाई, छिप्पक, छिंट, रंगरेज, कर्दम, बांधनू, गोरोकाना आदि।

प्रस्तावना

वस्त्र निर्माण हेतु एक महत्वपूर्ण चरण वस्त्रों की रंगाई था। रंगीन कपड़े तैयार करने के लिए कई बार कपड़े की बुनाई से पहले ही धागे को रंग लिया जाता था तदुपरांत जब कपड़ा बुना जाता था तो कपड़ा बुनने के साथ–साथ डिजाइन भी बनता जाता था।[1] परन्तु कई बार बुनाई के बाद भी कपड़े को रंगा जाता था।

ऋतु की विविधता से परिपूर्ण भारतीय जलवायु मात्र कपड़ों, उनके प्रकार एवं पहनावे को ही प्रभावित नहीं करती थी बल्कि रंगों के संबंध में लोगों की पसंद पर भी प्रभाव डालती थी। जैसे – शरद ऋतु में गहरे, बसंत में पीतवर्ण (पीले) एवं ग्रीष्म ऋतु में धवल (सफेद) व हल्के रंगों का प्रचलन था।[2] यदि पूर्ण रूप से अवलोकन किया जाए तो सामान्यतः महिलाएँ गहरे अर्थात् चटक एवं पुरुष हल्के रंग पहनना पसंद करते थे।

पूर्व मध्यकालीन भारतवासियों के मध्य जहाँ धवल (श्वेत रंग) के वस्त्र अति लोकप्रिय थे, वहीं दूसरी ओर इंद्रधनुषी एवं विविध रंगों को भी अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी।[3] विभिन्न रंग विविध अवसरों के साथ संबद्ध हो गये थे तथा उन अवसर विशेष पर किसी रंग विशेष को धारण करना एक परंपरा अथवा लोकप्रिय प्रचलन का रूप ले चुका था।

Author:- Karishma Agarwal
Email:- manojgoel232@gmail.com
Received:- 11 January , 2026
Accepted:- 23 March, 2026.
Available online:- 30 March, 2026
Published by JSSCES, Bareilly
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Non Commercial 4.0 International License

यथा – विवाह के अवसर पर नवयुगल हेतु लाल रंग धारण करना अत्यंत शुभ समझा जाता था। राज्यश्री ने भी अपने विवाह के अवसर पर स्वयं को लाल रंग के आवरण अर्थात घूँघट से आच्छादित कर रखा था।[4] राजपरिवार एवं दरबार अर्थात् राजसी वर्ग में नीलवर्ण अर्थात् नीला रंग लोकप्रिय था। धार्मिक प्रयोजनों, त्योहारों एवं धात्री (नई माँ) हेतु पीतवर्ण (पीला रंग) शुभ एवं मंगलकारी था।[5]

राजशेखर भी अपनी कृतियों में प्रतीहार काल में रंगीन वस्त्रों की लोकप्रियता एवं विविध रंगों के कपड़े अवसर विशेष पर पहनने का उल्लेख करते हैं। वह बताते हैं कि कपड़ों को रंगा जाता था और 'रक्तमसुका' अर्थात् लाल रंग के वस्त्र विवाह और त्योहार आदि अवसरों पर पहने जाते थे।[6]

कपड़ों की रंगाई–छपाई एक अलग हस्तकला उद्योग के रूप में विकसित हुई थी। मंदसौर अभिलेख में कपड़े रंगने वाले को 'छिप्पक' और रंगीन कपड़े 'छिंट' कहे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[7] इस प्रकार कपड़े रंगने वाले को एक अलग वर्ग के रूप में 'रंगरेज' कहा जाता था, जो कि जुलाहा (बुनकर) से पृथक वर्ग था। रंगरेज विभिन्न रंगों को तैयार करने, वस्त्र रंगने में निपुण होते थे।

वस्त्रों को रंगने के लिए प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था। इस हेतु वनस्पतियों के विभिन्न भागों जैसे फूल, पत्ती, जड़, तना आदि का प्रयोग करके रंग बनाए जाते थे, तथा रंगों में प्रयोग होने वाली सामग्री का अधिकाधिक उत्पाद किया जाता था। रंगों के निर्माण हेतु हरिद्रा (हल्दी)[8], मंजिष्ठा (एक आयुर्वेदिक पुष्पित पादप)[9], कुमकुम या कुंकुम[10], पाटल[11], कुसुम्भा (पुष्प)[12] आदि द्वारा विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण किया जाता था।

यूनानी इतिहासकार टेसियस ने भारत में नील उत्पादन तथा रोम–ग्रीक को इसका निर्यात करने का उल्लेख किया है। पेरिप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी और प्लिनी भी बार्बरिकम बंदरगाह से नील निर्यात का उल्लेख करते हैं।[13] नील रंग पौधे का उत्पाद था, जिसके पत्तों को पानी में गला कर मथते थे, फिर आसवन विधि से मथा हुआ पानी गर्म किया जाता था जिससे पानी भाप बनकर उड़ जाता था और नील का पाउडर प्राप्त हो जाता था।

लाख, रोचना, कर्दम, हरिद्रा द्वारा भी वस्त्रों को रंगे जाने का उल्लेख किया गया है। रोचना हरताल को ही कहा जाता था। तालाब के सड़े कीचड़ से कर्दम रंग तैयार किया जाता था तथा उस रंग से रंगे वस्त्र कर्दम कहलाते थे। इसी प्रकार लाल रंग से रंगे वस्त्र – लोहितक, काले रंग से रंगे वस्त्र – कालक, लाख से रंगे वस्त्र लाक्षिक, पीत (पीले) रंग से रंगे वस्त्र पीतक कहे जाते थे।[14] हर्षवर्द्धन के काल में चर्मरंग (कार्दरंग), सुवर्णद्रति (गोल्डन रंग) से वस्त्रों को रंगने का वर्णन प्राप्त होता है। जैन ग्रंथ 'निशीथचूर्णि' में हर्ष के समय सुवर्णद्रति (यानि तरल स्वर्ण) द्वारा सूत रंगने के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[15]

अलग–अलग रंगों से रंगे गए वस्त्रों के अतिरिक्त एक ही वस्त्र को विविध रंगों से रंगने अर्थात् बहुरंगी या इंद्रधनुषी रंगों वाले वस्त्रों का भी प्रचलन था। एक ही वस्त्र के थान पर विभिन्न रंगों से रंगाई–छपाई, कढ़ाई, चित्रकारी या रंगोली करने से कपड़े की सुंदरता बहुत बढ़ जाती थी।

बाणभट्ट द्वारा दो या दो से अधिक रंगों को मिलाकर नवीन रंगों का निर्माण करने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[16] रंगों के निर्माण हेतु खनिज पदार्थों का भी उपयोग किया जाता था।[17] इसके अतिरिक्त रंग का निर्माण भले ही किसी सामग्री या पदार्थ से हुआ हो परन्तु अपनी गर्म अथवा ठंडी अवस्था में इन रंगों की प्रकृति एवं चमक में भी बदलाव आ जाता था, जिससे यह अपनी अवस्थाओं के अनुरूप प्रिय अथवा अप्रिय लग सकते थे। ऐसा उल्लेख क्षेमेंद्र (समयमात्रिका में) करते हैं।

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 02, Issue: 01, March, 2026
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

कुछ रंगों की प्रकृति स्थायी, कुछ की मध्यम एवं कुछ की अस्थायी अथवा क्षणिक होती थी।

बाणभट्ट द्वारा 'कूर्पासक' नामक एक वस्त्र को रंगने की विधि का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सबसे पहले कपड़े को किसी हल्के रंग के हौज में डुबो दिया जाता था, फिर हरड़, बहेड़ा, आँवला, आम की पत्ती आदि कसैले पदार्थों से रंग तैयार कर उसमें डुबो दिया जाता था, जिससे कपड़े पर रंग पक्का और चितकबरापन आ जाता था। ऐसे कपड़े को कूर्पासक के रूप में जाना जाता था।[18] ऐसे रंगीन बहुरंगी कपड़ों का प्रचलन गुप्तकाल में भी था, क्योंकि अजंता के चित्रों से ज्ञात होता है कि एक ही चोली पर पीठ का रंग अलग है, जबकि सामने का कुछ और। अजंता में ऐसे अनेक बहुरंगे वस्त्रों वाले चित्र मिल जाते हैं। अजंता के ही एक अन्य चित्र में पीठ की ओर कत्थई और सामने की ओर लाल रंग व बड़े–बड़े बिंदुकी वाले वस्त्र का भी चित्रांकन प्राप्त होता है।[19] हर्षकाल में कुसुम्भी रंग के लाल लहंगे का उल्लेख प्राप्त होता है, जिस पर रंग–बिरंगी बिंदुकियाँ छपी होती थीं। इस प्रकार के छपाई–रंगाई वाले काम को फुलकबंध, चित्रमया, वानचित्रित आदि के नाम से जाना जाता था। बाघ गुफाओं के अधिकांश चित्रों के वस्त्र रंगीन चमकदार धारियों वाले हैं।[20] दक्षिण भारत के दो समुदाय सलियार तथा कौर्क्ईक्कोलार ने कपड़े की रंगाई एवं बुनाई में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।[21] दक्षिण भारत से रंगीन कपड़ों की सबसे अधिक मांग विदेशों में होती थी। विदेशों में भारतीय बहुरंगी छींट कपड़ों की काफी अधिक मांग थी और कपड़ों पर रंगाई–छपाई के क्षेत्र में भारतीय एकाधिकार मुगलों के समय तक स्थापित रहा। तत्कालीन ग्रंथों, विदेशी यात्रियों व उनके विवरणों द्वारा भारतीय कपड़े के विश्व व्यापार में एकाधिकार के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

बाणभट्ट द्वारा हर्षचरित में तत्कालीन रंगाई–छपाई आदि सम्बन्धी विवरण

विवेच्य काल में बाणभट्ट द्वारा अपनी सुप्रसिद्ध कृति हर्षचरित में राज्यश्री के विवाह के अवसर पर चौथे उच्छ्वास के अन्तर्गत वस्त्र तकनीक से जुड़ी विभिन्न अति महत्वपूर्ण जानकारियाँ साझा की हैं। इन विवरणों को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत समझ सकते हैं–

(1) बांधनू की रंगाई के कपड़े – इसके अन्तर्गत बाणभट्ट बताते हैं कि नगर की वृद्ध कुशल महिलाएँ अनेकों प्रकार की भक्तियों (डिजायनों के लिए प्राचीन संस्कृत शब्द भक्ति ही था) के निर्माण में व्यस्त थीं तथा बांधनू की रंगाई (आधुनिक टाई एंड डाई (tie and dye) के लिए वस्त्रों को बांध रही थीं।[22] बाणभट्ट विभिन्न प्रकार की आकृतियों को छापने के लिए युवतियों व स्त्रियों द्वारा उसी के अनुरूप वस्त्रों को डोरियों से बांधने का उल्लेख करते हैं। फिर वह बताते हैं कि बंधे कपड़े को रंग में डुबो दिया जाता था और कपड़ा सूखने पर डोरी को खोल दिया जाता था। बंधाई की जगह रंग नहीं चढ़ता था और उसी से कपड़े में विशेष आकृति बन जाती थी और इसी आकृति के अभिप्राय के लिए प्राचीन संस्कृत शब्द था – भक्ति। उसी से हिन्दी शब्द भांत बना। इन भांतों अर्थात् डिजायनों के अनेक नाम थे। पंख की तरह हाथ फैलाए हुए स्त्रियों की आकृति सखियों की भांत कहलाती थी। तरह–तरह की चिड़ियों की 'चिड़ी–चुड़कले की भांत', लाडू की भांत, चकरी की भांत, पोंचने की भांत (चार कोनों पर चार और बीच में एक कमल के फुल्ले और शेष सब स्थान खाली), धनी भूंगड़े (भूने हुए धान के ऊपर भूने हुए चने की आकृति की बूंदी) की भांत, डलिया या छाबड़ी की भांत, रास (नाचती हुई स्त्रियाँ) भांत, व्याघ्रकुंजर भांत आदि अनेक प्रकार की डिजायनों यानि भांत का प्रचलन था। कभी–कभी एक कपड़े को कई रंगों में एक दूसरे के बाद रंगते हैं और पहली भांत के अतिरिक्त अन्य स्थान में बंधाई करके दूसरी भांत उत्पन्न करते हैं। भारतवर्ष की यह लोकव्यापी कला थी, जिसे बचपन में ही स्त्रियाँ घरों में सीख लेती थीं। भिन्न–भिन्न ऋतुओं और

अवसरों पर ओढ़ी जाने वाली चुनरियों की भांतें अलग–अलग होती थीं जैसे– लड्डू की भांत की केसरिया रंग की चुनरी फागुन में और लहरिया की सावन में ओढ़ी जाती थी। बांधनू की रंगाई का यह उल्लेख सबसे प्राचीन है।

(2) वस्त्रों की रंगाई :– इस संदर्भ में विवाह आदि शुभ अवसरों पर वस्त्र रंगने संबंधी एक मांगलिक रिवाज व नेग परम्परा का जिक्र करते हुए बताते हैं कि प्रायः स्त्रियाँ घरों में वस्त्रों को बांध देती थीं और उसके बाद रंगने के लिए वह कपड़ा रंगरेज को दे दिया जाता था, क्योंकि ब्याह की चुनरी और पीलिए की रंगाई मांगलिक है, इसलिए इस अवसर पर रंगने वाले रंगरेज को विशेष नेग देने की प्रथा थी। बाण इस विषय में लिखते हैं कि अंतःपुर की बड़ी–बूढ़ी स्त्रियों के द्वारा रंगने वालों को जो नेग या पूजा–भेंट दी जा रही थी, उससे प्रसन्न होकर वह लोग वस्त्र रँग रहे थे तथा रँगे जा चुके वस्त्र परिजनों द्वारा छाया में सुखाए जा रहे थे।[23] आज भी चटकीले रंगों के वस्त्रों को छाया में ही सुखाने की परंपरा है।

(3) वस्त्रों में चुन्नट डालना :– बाणभट्ट बताते हैं कि सेवक लोग उठे हुए हाथों से चुटकी दबाकर उत्तरीय या उपरने (दुपट्टे) की तरह प्रयुक्त वस्त्रों में चुन्नट डालकर उन्हें मरोड़ी देकर रख रहे थे।[24] चुन्नट डालने के लिए अभी तक भांजना शब्द प्रयुक्त होता है। चुन्नट डाले हुए कपड़े को अन्य कपड़ों की तरह मोड़कर तह नहीं बनाई जाती थी बल्कि उमेठकर कुंडलित (यानि गोल करके) रखा जाता था। उसी के लिए यहाँ भंगुर शब्द आया है। अहिच्छत्रा से प्राप्त एक मिट्टी की मूर्ति के गले में भंगुर उत्तरीय का स्पष्ट नमूना अंकित पाया गया है, जिससे इसे समझना और अधिक स्पष्ट हो गया। भास्करवर्मा द्वारा हर्ष को भेजे गए उपहारों में क्षौम वस्त्रों का वर्णन है, जो इसी प्रकार कुंडली करके बेंत की करंडियों में रखे गए थे। वे वस्त्र इसी प्रकार के भंगुर उत्तरीय होने चाहिए, जिन्हें गेंडुरीदार तह बनाकर करंडियों में रखते थे।

वस्त्रों के छापे:-

विवेच्यकाल में वस्त्रों पर विभिन्न प्रकार के छापों का प्रचलन था। बाणभट्ट द्वारा भी 'हर्षचरित' में इससे संबंधित उल्लेख किया गया है। बाणभट्ट इस संदर्भ में दो प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख करते हैं। एक वह, जिन पर फूल–पत्तियों के काम की छपाई आड़ी लहरिया के रूप में छापी जाती थी। सफेद या रंगीन वस्त्र पर फूल–पत्ती की आकृतियों वाले ठप्पों को आड़े या टेढ़े ढंग से रखकर छपाई की जाती थी, जिससे फूल–पत्तियों का अंकन कपड़े पर हो जाता था। इसके लिए बाण द्वारा **'कुटिलक्रमरूपक्रियमाणपल्लवपरभाग'** इस पद का प्रयोग किया है। इसमें चार शब्द आते हैं, जो पारिभाषिक हैं–

1. कुटिलक्रम– (कुटिलः क्रमो येषाम्, शंकर) का अर्थ था, जिनके छापने की चाल यानि क्रम सीधी रेखा में न जाकर टेढ़ी अर्थात् एक कोने से सामने के कोने की तरफ चलती है।

2. रूप– रूप का अर्थ ठप्पों से बनाई जाने वाली रेखाकृतियों से है। आकृतियुक्त ठप्पे के लिए प्राचीन पारिभाषिक शब्द रूप था।

3. पल्लव– पल्लव से तात्पर्य था फूल–पत्ती का काम, जिसे बाण द्वारा पत्रलता, पत्रावली, पत्रांगुली कहा है। गुप्तकाल एवं उसके उपरांत की शिल्पकला एवं चित्रकारी आदि में फूल–पत्तियों के भांति–भांति के कटाव की प्रथा अत्यंत उन्नत अवस्था में पहुँच चुकी थी। अजन्ता एवं अन्य वास्तुमूर्तियाँ जिसका जीवंत साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं।

4. परभाग– स्वयं बाण द्वारा वस्त्रों के प्रसंग में इसका अन्यत्र प्रयोग किया है।[25] एक रंग की पृष्ठभूमि पर दूसरे रंग में छपाई, कढ़ाई, चित्रकारी या रंगोली आदि बनाकर जो सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है, उसे परभाग कल्पना,

अर्थात् पहले पृष्ठभूमि के रंग पर दूसरे रंग की रचना कहा जाता है।[26]

बाणभट्ट एक दूसरे प्रकार के वस्त्र का भी उल्लेख करते हैं जो कि कुंकुम के थापों से छपाई करके विशेषतः वर (दूल्हा) के लिए तैयार किए जाते हैं। गीले कुंकुम (नींबू के रस में भीगी हल्दी) से सफेद वस्त्र पर हाथ से चित्तियाँ छापकर उसे मांगलिक बनाया जाता था।[27] इसके अतिरिक्त भी कई विविध प्रकार के छापों का प्रचलन उस समय था, जिनमें से प्रमुख के विषय में हम निम्न तालिका द्वारा संक्षेप में समझ सकते हैं।

क्रं0	प्रमुख छापे	विवरण
1.	**पुष्प एवं लताएं**	जैसा कि पूर्व में भी बताया गया कि विभिन्न प्रकार की लताओं एवं पुष्पों के छापे अत्यधिक लोकप्रिय थे, विशेषकर युवतियों एवं स्त्रियों के मध्य। कटारमल (अल्मोड़ा) से प्राप्त एक चतुर्भुज देवी की मूर्ति पर आड़ी–तिरछी साड़ी पर पुष्प अलंकरण दर्शाया गया है, जिसमें चौड़ी पत्ती वाले पत्तों के पैटर्न थे। चीनी यात्री चाऊ–जू–कुआ भी सफेद सूती फूलों के छापे वाले वस्त्रों की प्रशंसा करता है।
2.	**हंस–मिथुन**	हंस मिथुन अथवा हंस युगल, अर्थात् हंसों के जोड़े का चित्रांकन या छापा एक अति लोकप्रिय, राजसी एवं उच्च स्तरीय छापा या डिजाइन माना जाता था। विशेष रूप से दुकूल वस्त्रों पर इस प्रकार का सर्वाधिक अंकन होता था। हंस मिथुन के वस्त्र पहनना तत्कालीन युग में फैशन का प्रतीक माना जाता था।
3.	**केसर या कुंकुम**	जैसा कि पूर्व में बाणभट्ट के विवरण में भी कुंकुम के छापों के बारे में बताया गया कि यह अत्यधिक मांगलिक माने जाते थे। इसके अतिरिक्त केसर के लेप से छाप बनाकर भी सुन्दर वस्त्रों का निर्माण किया जाता था। सुनहरे पैर छपे रेशमी वस्त्र भी अत्यधिक लोकप्रिय थे।
4.	**ज्यामितीय संरचनाएं**	इस प्रकार के छापे भी काफी प्रचलित थे। अजंता के भित्ति चित्रों में सरलता से इन्हें देखा जा सकता है।
5.	**चित्तीदार छाप**	बाणभट्ट द्वारा भी इस प्रकार के छापे का उल्लेख किया गया है। अंगरखा पर बाघ की खाल के समान चित्तीदार छापे बनाए जाते थे।
6.	**बिंदु एवं धारियां**	अजंता एवं बाघ[28] की गुफाओं में भी दृष्टिगोचर यह धारीदार वस्त्र राजाओं की शाही पोशाकों के महत्वपूर्ण व लोकप्रिय छापे थे।[29] अजंता में बंधना डिजाइन को भी देखा जा सकता है। सामान्यतः मथुरा सूती धारीदार वस्त्रों के निर्माण का एक प्रमुख एवं प्रसिद्ध केन्द्र था।[30]
7.	**अर्द्धचन्द्राकार**	इस छापे के डिजाइन में मोतियों का प्रयोग किया जाता था। यह मोतियों द्वारा सजाया जाने वाला डिजाइन, शाही परिवार द्वारा प्रयोग किए जाने वाले छत्रों पर रूपांकित किया जाता था।
8.	**गोरोकाना छापे**	शाही परिवार एवं राजसी व्यक्तियों हेतु सफेद रेशमी वस्त्रों पर गोरोकाना/गोरोचना रंग से छापे बनाए जाते थे।[31]
9.	**पंडालों के छापे**	विविध अवसरों पर लगने वाले पंडालों को भी विभिन्न छापों द्वारा सजाया जाता था। बाणभट्ट भी अपनी कृतियों (विशेषकर हर्षचरित) में विविध अवसरों पर लगे पंडालों व उनके छापों की सुंदरता का वर्णन करते हैं।
10.	**मुद्रांकित छापे**	सूती एवं रेषमी वस्त्रों पर बनाए जाने वाले इस डिजायन में केसर से राजा के पैरों की छाप छापी जाती थी।[32]

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 02, Issue: 01, March, 2026
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

कढ़ाई:-

सूती, ऊनी, रेशमी अथवा किसी भी प्रकार के वस्त्र पर रंगाई एवं छपाई की भाँति कढ़ाई को भी खूब पसंद किया जाता था।[33] कढ़ाई में धागों, मोतियों, मनकों, स्वर्णतार आदि से कपड़ों को सजाने की प्रक्रिया सम्मिलित होती थी। पारंपरिक कढ़ाई में प्रयुक्त कपड़ा और सजाने की सामग्री, विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग होती थी। पुण्ड्र क्षेत्र (उत्तर बंगाल) मुस्लिमों के आगमन एवं बसावट तक अपने मुद्रित वस्त्रों एवं कढ़ाई के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध रहा। दामोदरगुप्त चिंतामणि नामक एक उच्चाधिकारी के पुत्र द्वारा स्वर्ण से कढ़े हुए बहुमूल्य वस्त्र धारण करने का उल्लेख करते हैं।[34] अजंता की गुहा संख्या 17 में चित्रित एक राजसी चित्रांकन को दिखाने वाले भित्ति चित्र में बने एक शाही घुड़सवार को कमर तक की जैकेट पहने हुए दिखाया गया है। इसकी छोटी आस्तीन पर, गर्दन पर तथा सामने के खुले भागों पर कढ़ाई की गयी थी।[35] शाही एवं धनाढ्य परिवारों के सदस्य स्वर्ण तारों से कढ़े गए सुंदर डिजायनों वाले परिधान धारण करते थे। ऐसा परिधान वस्त्र–सज्जा एवं राजसी गौरव दोनों का प्रतिनिधित्व करता था। बाणभट्ट द्वारा भी हर्ष–चरित में रानी यशोमति के प्रसव का वर्णन करते हुए उनके पंडालों पर की गयी सुन्दर कढ़ाई का उल्लेख किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि मात्र परिधानों की ही नहीं बल्कि पंडालों एवं अन्य गृहोपयोगी वस्त्रों की शोभा एवं वैभव बढ़ाने हेतु भी कढ़ाई की जाती थी।

ब्रोकेड :– यह एक बेल्टनुमा परिधान होता था, जो कि सामने की ओर वस्त्र की गुच्छेदार सिलवटों पर टिका रहता था और परिधानों की सुंदरता को और अधिक बढ़ाने हेतु प्रचलित था।[36] पाल काल में भी विभिन्न अलंकरणों व कढ़ाई से सुसज्जित ब्रोकेड (नक्काशीदार उभार वाला वस्त्र) को देखा जा सकता था। वर्तमान में उभार वाले बुने कपड़े को ब्रोकेड बोलते हैं।

वस्त्रों की जाली :– वस्त्र की सुंदरता, वैभव, विभिन्नता एवं उसको और अधिक मूल्यवान दिखने व बनाने हेतु आधुनिक समय की लेसों की भांति वस्त्रों द्वारा बनाई गयी जालियों का प्रयोग किया जाता था। मेधातिथि के अनुसार परित्यक्ता स्त्रियों द्वारा जीविकोपार्जन हेतु किया जाने वाला यह सबसे प्रचलित उद्यम था।

1. डूरेंट, विल, सभ्यता की कहानी, (अनु०) श्री कांतन्यास, पृ०– 173
2. सोमेश्वर III, मानसोल्लास, VV, 1034–39
3. आचार्य नेमिचन्द्र, आख्यानकमणिकोश (Akhyaanakamanikosa), 319, 263; चाऊ–जु–कुआ, पृ०– 98; श्री हर्ष, नैषधचरित, XV, XVI (Canton); धनपाल, तिलकमंजरी, पृ०– 115, 164, 197; हर्षचरित (ई० वी० कॉवेल व एफ० डब्ल्यू० थॉमस का अनुवाद) पृ०– 202; इलियट और डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस, I, पृ०– 107; सोमेश्वर III (कल्याणी चालुक्य सम्राट), मानसोल्लास, VV, 1021–22, 35–36; हेमचंद्र, देशीनाममाला, II, 65; VI, 63; VII, 75; VIII, 37
4. हर्षचरित, (ई० बी० कॉवेल व एफ० डब्ल्यू० थॉमस का अनुवाद) पृ०– 128, 237
5. बाणभट्ट, कादम्बरी, निर्णय सागर प्रेस, पृ०– 125
6. राजशेखर, विद्धशालभंजिका, भाग– 02, पृ०– 53
7. चक्रवर्ती, रणवीर, भारतीय इतिहास का आदिकाल, पृ०– 31
8. बाणभट्ट, कादम्बरी, निर्णय सागर प्रेस, पृ०– 125
9. महाकवि माघ, शिशुपालवध, XVIII, 34; भर्तृहरि, श्रृंगारशतक, पृ०– 97; भारवि, किरातार्जुनीयम्, VII, 36
10. हर्षचरित (E.B. कॉवेल व F.W. थॉमस का अनुवाद), पृ०– 125
11. महाकवि माघ, शिशुपालवध, VIII, 30; हर्ष, रत्नावली, I, 20; हर्षचरित, पृ०– 262
12. वहीं
13. डा० मोतीचंद्र, सार्थवाह, पृ०– 16
14. डा० हिमांशु, प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी, पृ० – 191
15. डा० अग्रवाल, वासुदेव शरण, हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 174
16. J.O.R.M. (जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास), III, 1933

Janak: A Journal of Humanities
"An International, Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal"
(I S S N : 3 1 1 7 - 3 4 6 2) Volume: 02, Issue: 01, March, 2026
Available on https://janakajournal.in/index.php/1/about

17. बाणभट्ट, कादम्बरी, निर्णय सागर प्रेस, पृ० – 371
18. डा० अग्रवाल, वासुदेव शरण, पूर्वोद्धृत, पृ० – 156
19. वहीं
20. बाशम, ए. एल, अद्भुत भारत, पृ० – 176
21. डा० सिंह, उपिंदर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ० – 644
22. बहुविधभक्तिनिर्माणाचतुरपुराणपौरपुरन्ध्रिबह्यमानैर्बद्धरैश च। चतुर्थ उच्छ्वास, हर्षचरित
23. आचारचतुरान्तःपुरजरतीजनितपूजाराजमानरजकरन्यम ानैः रक्तैश्च,
    उभयपटान्तलग्नपरिजनप्रेङ्खोलितैश्छायासु
    शौष्यमार्गोः शुष्कैश्च ।
    143, चतुर्थ उच्छ्वास, हर्षचरित
24. उद्भुजभुजिष्यभज्यमानभङ्गरोत्तरीयैः। चतुर्थ उच्छ्वास, हर्षचरित
25. अलिनीलमसृणसतुला समुत्पादितसितसमायोगपरभागैः। (206) हर्षचरित ; हर्षचरित के टीकाकार शंकर ने यहाँ पर परभाग का अर्थ किया है – परभागो वर्णस्य वर्णान्तरेण शोभातिशयः ।
26. रङ्गवल्लिषु परभागकल्पनम्, यशस्तिलकचम्पू, भा–2, पृ० – 247
27. आरब्धकुङ्कुमपङ्कस्थासकच्छुररौः। चतुर्थ उच्छ्वास, हर्षचरित
28. बाघ गुफा, P.L.E
29. हर्षचरित (E. B. कॉवेल व F.W. थॉमस का अनुवाद), पृ० – 197, 203; कादम्बरी (C.M. रिडिंग अनुवाद), लंदन, 1896
30. गोयल, श्री राम, प्राचीन भारत का इतिहास, खण्ड – 03, कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ 2003
31. बाणभट्ट, कादम्बरी (एम. आर. काले अनुवाद), बंबई, 1924
32. इलियट एवं डाउसन, हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियन्स, I, पृ० – 107, III – पृ० – 43
33. हर्षचरित (अनुवाद कॉवेल एंड थॉमस), पृ० – 108, 197 ; महाकवि माघ, शिशुपालवध, II, 74 ; क्षेमेन्द्र, देशोपदेश, IV, 9–10 ; श्री हर्ष, नैषधीयचरित, XXI. 14–15, दामोदरगुप्त, कुट्टनीमतम्, पृ० – 12, V.66
34. दामोदरगुप्त, कुट्टनीमतम् (सं० टी० रे०), श्लोक 66 पृ० – 12
35. अजंता, ललितकला एकेडेमी, Pl- XIII
36. दण्डीए दषकुमारचरित, पृ0 – 144